नेपाल में नाटकीय पटाक्षेप : कितने तंत्र : राजतंत्र, प्रजातंत्र या माओतंत्र?

ए. सी. सिन्हा*

विगत वर्षों से नेपाल प्रायः समाचार पत्रों की सुर्खियों में छाया रहा। घटनाक्रम, उनके सूत्रधार, उनके अभिनेता, पर्यवेक्षक या जन-साधारण जब तक एक छवि की पहचान बनाते तब तक कम-से-कम तीन नयी संभावनायें आ खड़ी होती। गौरवशाली हिन्दु राजशाही अपनी विसंगतियों से सीख लेने के स्थान पर अपनी ही प्रजा से कटती जाती है। अपने विशाल जनाधार के बावजूद नेपाल में जनतांत्रिक संघर्ष का प्रणेता, नेपाली कांग्रेस, अपने नेतृत्व के खोखलेपन के कारण नेपाल में राष्ट्रीय स्थायित्व प्रदान नहीं कर पाती है। मनमोहन अधिकारी का साम्यवादी दल और उसके विभिन्न बिखरे घटक जनसाधारण में विश्वास के स्थान पर संशय और आक्रोश पैदा करते हैं। विभिन्न राजतांत्रिक राजकीय घटक भ्रष्ट सामन्तशाही के चाटुकार चाकर के रूप में सामने आते हैं। हथियारबन्द माओवादी गोरिल्ले दूरदराज के दुर्गम क्षेत्रों के सरकारी प्रतिष्ठानों को ध्वस्त करते हैं, लोगों को बन्धक बनाते हैं; हत्या, आगजनी और लूटखसोट के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में अराजकता स्थापित करते हैं। राजशाही आरक्षी जन भाग खड़े होते हैं। लड़ाकू गोरखा सेना आंतरिक अराजकता से जूझती तो हैं, परन्तु निर्णायक विजय नहीं प्राप्त कर पाती। इस अराजकता, अव्यवस्था और आक्रोश के बीच नेपाल नरेश और उनकी प्रजा के बीच का परम्परागत सम्वाद टूट जाता है। परिणाम जानते हुये भी नेपाल नरेश अपनी प्रजा से हठधर्मी करते हैं। फलस्वरूप करीब ढाई सौ साल पुरानी गोरखावंशीय राजतंत्र का अन्त होता है। परन्तु प्रशासन एक प्रश्न ही बना रहता है। एक तरफ तो टूटती परम्परा की जंजीरों से स्वतंत्र प्रत्येक समुदाय अलग दिशा का रुख किये हुए हैं; तो दूसरी तरफ, कुछ अन्य एक नये प्रकाश के विवेकरहित राष्ट्रीयता के बुखार से पीड़ित है। नेपाल में सब कुछ बदल रहा है और यह बदलाव आराजक, त्वरित और दिशाहीन दिखता है।

---

* प्रोफेसर, ए. सी. सिन्हा, पूर्व संकायाध्यक्ष, समाज विज्ञान संकाय, पूर्वोत्तर पार्वत्य विश्वविद्यालय, शिलौंग। पताः डी7/7331, बसंत कुंज, नयी दिल्ली-110070

पृष्ठभूमि

आखिर ऐसी स्थिति कैसे आ खड़ी हुई? इस सरल प्रश्न का उत्तर जटिल है। इसके लिए हमें नेपाल की भौगोलिक स्थिति, इसके इतिहास, अर्थव्यवस्था और पिछले छह दशकों की राजनीति को सरसरी नजर से देखना होगा।

मध्य हिमालय के दक्षिणी ढलान पर अवस्थित नेपाल करीब पांच सौ मील लम्बा और 130 मील चौड़ा और 54,000 वर्ग मील में फैला एक छोटा सा आयतकार देश है। नेपाल में उत्तुंग पर्वत चोटियाँ, बर्फीली सदा सलिला नदियाँ, उपजाऊ नदी घाटियाँ, सघन वन और तराई के मैदानी भाग हैं। यहाँ के निवासी गोरखे प्रायः गठीले, ठिगने, हरफनमौला और अत्यन्त परिश्रमी होते हैं। उद्योगों के अभाव में यह कृषकों और पशुपालकों का देश है। विभिन्न पर्वत श्रृंखलाओं, घाटियों में विभिन्न भाषा-भाषी प्रजातियों की आबादी है। इस प्रकार नेपाल में सर्वाधिक जातियाँ जनजातियाँ हैं। काठमांडु घाटी और तराई में कुछ मुसलमान बसते हैं। नेपाल के विभिन्न क्षेत्रों में बौद्ध धर्मावलम्बी बसते हैं। नेपाली, नेवारी, मैथिली और हिन्दी मुख्यभाषायें बोली और लिखी-पढ़ी जाती है। खेती और पशुपालन के अतिरिक्त नेपाली युवक भारत, ब्रिटेन और नेपाल की सेना में गोरखा सैनिकों के रूप में यश कमा चुके हैं। एक जमाने में अंग्रेजी साम्राज्य नेपाल को 'सिपाहियों की खेती' (Soldiers' farm) मानता था। परन्तु स्थिति आज बदल चुकी है। आधुनिक नेपाली अर्थव्यवस्था खेती, विदेशी मनीआर्डर (moneyorder) और पर्यटकों से होने वाली आय पर आश्रित है।

विभिन्न पर्वत श्रृंखलाओं में अवस्थित गणजातियाँ प्राचीनकाल से प्रायः अपने सरदारों, मुखियाओं के अधीन संगठित थीं। एक प्रकार की आदिम अर्थव्यवस्था प्रचलित थी जिसमें वस्तु-विनिमय होता था और कृषक प्रायः अभाव का जीवन व्यतीत करते थे। पर्याप्त बचत के अभाव में केन्द्रीय संगठन का अभाव था। कहते हैं कि मध्य और तराई का अधिकांश भाग मगध साम्राज्य का अंग था। तराई की शाक्य और लिच्छवी गणजातियाँ कालान्तर में मौर्य और गुप्त साम्राज्य में अन्तर्मुक्त हो गयीं। पौराणिक मिथिला नरेश जनक और ऐतिहासिक मिथिला पूर्वी तराई को अलग नहीं किया जा सकता। कालान्तर में गोपाल (गाय पालने वाले) और महिषपाल (भैंस पालने वाले) वंशीय शासकों ने राज्य किया। एक अनुमान के अनुसार नेपाल शब्द की व्युत्पत्ति तिब्बती मूल के 'न्हत' (पशु) + पा (मनुष्य) शब्दों में निहित है, जिसका अर्थ हुआ 'पशुपालक।'. स्मरणीय है कि आज भी नेपाल की अर्थव्यवस्था में कृषि और पशुपालन का मुख्य योगदान है। यों तो 'नेपाल' शब्द की व्युत्पत्ति विषयक दो अन्य विचारधारायें भी हैं। कहा जाता है कि प्राचीन काल में काठमांडु घाटी के स्थान पर एक झील हुआ करती थी। परम्परा है कि 'नेति' ऋषि ने दक्षिणी पर्वत-कन्दराओं को काटकर झील के पानी को दक्षिण दिशा में प्रवाहित करा दिया और घाटी में कृषि

व्यवस्था का आरम्भ किया। फलस्वरूप कृतज्ञ कृषकों ने अपनी भूमि को नेति द्वारा पालित - नेपाल - (ने + पाल) - नाम दिया। सदियों तक नेपाल का अर्थ मात्र काठमांडु घाटी होता था। एक अन्य विचार के अनुसार नेपाल शब्द काठमांडु घाटी के मुख्य और प्राचीन निवासियों, नेवारों के नाम पर, नेवार शब्द का ही एक रूप है। शब्द की व्युत्पत्ति जो भी हो, नेपाल शब्द सीमित अर्थों में ही प्रयुक्त होता था। यहाँ तक तक कि जॉन ह्वेल्पटन (John Whelpton) के मुताबिक 1930 के दशक में राणाओं ने 'गोरखा' राज्य और 'गोरखाली' भाषा को 'नेपाल' राज्य और नेपाली भाषा के रूप में नामकरण किया। फिर भी नेवार समुदाय के सदस्य वर्षों तक नेवार भाषा को ही 'नेपाली' की संज्ञा देते रहे।

गोरखा या नेपाली

आज के नेपाल को परिभाषित करने के लिए मध्य काल में कोई शब्द नहीं था। मानवशास्त्री मानते हैं कि प्रतिष्ठान और प्रभुता के भूखे गणजाति सरदार प्रायः निर्बल और निर्धन क्षत्रिककन्याओं से ब्याह रचा कर सामाजिक प्रतिष्ठा पाते रहे हैं। कहा जाता है कि मध्यकाल में नेपाल के 'खस' गणजाति के सरदार इसी प्रक्रिया को अपना कर क्षत्रिय बने। इसी समय तुर्क आक्रमण और मुगल आक्रमणों से आक्रान्त और परास्त पश्चिमी भारत के कुछ क्षत्रिय नेपाल की पहाड़ियों में शरणागत हुये और अपने पराक्रम से कई छोटे-बड़े राज्यों का संगठन किया। गाहे-बगाहे ये रजवाड़े अपने को मुगल बादशाह के अधीन मानते थे। पश्चिमी नेपाल में अवस्थित 'बाइसी' (22) और मध्य नेपाल में अवस्थित 'चौबीसी' (24) राज्यों के संघ ऐसी ही इकाईयाँ थी। स्मरणीय है कि पूर्वी तराई का इतिहास मिथिला का इतिहास था और काठमांडु घाटी में मल्ल वंशियों का राज्य था। गोरखा नामक छोटा राज्य चौबीसी का एक इकाई था तथा अधिकांशतः आधुनिक पूर्वोत्तर नेपाल 'किरात' मूलक गणजातियों के वश में था। उपरोक्त गोरखा राज्य की स्थापना द्रव्यशाह ने 1559 में की थी। गोरखा नरेश अपने को चित्तौड़ (राजस्थान) गढ़ के जुझारू क्षत्रिय परिवार का प्रवासी अंग मानता है। द्रव्यशाह के 10वीं पीढ़ी में इस वंश का सर्वाधिक यशस्वी नरेश, पृथ्वी नारायण शाह, का जन्म 1728 में हुआ। चौदह वर्ष में सिन्हासत्तारूढ़ होने से लेकर मृत्यु पर्यन्त (1775) पृथ्वीनारायण शाह ने अपने अथक प्रयास और अदम्भ युद्ध कौशल से नेपाल का एकीकरण किया। कृतज्ञ राष्ट्र उन्हें नेपाल के राष्ट्रपिता के (Father of the Nation) रूप में याद करता है। उनके बाद तीन उत्तराधिकारियों ने राज्य की सीमा पश्चिम में सतलज नदी से लेकर पूरब में तीस्ता नदी तक तथा उत्तर में हिमालयी शिखरों से लेकर दक्षिण में तराई के मैदानों तक फैला दी। गोरखा सैनिकों को तनख्वाह के स्थान पर विजित राज्यों में लूट-खसोट करने की आजादी थी तथा सेना नायकों को जागीरें और पदवियाँ दी जाती थीं। इस प्रकार गोरखा सेना अनवरत युद्ध करने के

लिए उद्धत रहती थी। पृथ्वी नारायण शाह ने अपने को "पर्वतों का राजा" तथा गोरखा राज्य को "असली हिन्दुस्तान" बताया और अपने राज्य को "चार वर्णों और छत्तीस जातियों की फुलवारी" की संज्ञा दी। इस अवाध और अनवरत युद्ध एवं राज्य विस्तार की परिणति 1814-15 में भारत की तत्कालीन औपनिवेशिक सरकार, ईस्ट इंडिया कंपनी, और नेपालियों के बीच युद्ध में हुई। आधुनिक हथियारों के अभाव और सीमित साधनों के बावजूद गोरखा सैन्किों ने कम्पनी की सेना का बहादुरी से सामना किया। यही नहीं, चार में से तीन मोर्चों पर अंग्रेजों को परास्त भी किया। परन्तु अन्ततोगत्वा जीत कम्पनी बहादुर की ही हुई और नेपाल को कम्पनी की शर्तों पर शुगौली की संधि करनी पड़ी। इस युद्ध ने अंग्रेजों और गोरखों को एक-दूसरे की सीमाओं और बारीकियों से परिचित कराया। जहाँ अंग्रेजों ने गोरखों को लड़ाकू, निर्भय, विनोदप्रिय और स्वामीभक्त पाया; वहीं गोरखों ने अंग्रेजों को खतरनाक दुश्मन, परन्तु दयालु मित्र पाया। यह दूसरी बात है कि अंग्रेजों की भारतीय साम्राज्य के इर्दगिर्द बफ्फर राज्य (Buffer State) की अवधारणा में गोरखा राज्य एक विशेष भूमिका अदा कर रहा था। संधि के अनुसार पश्चिम में काली गंडंकी और पूरब में मेची नदी नेपाल की सीमा बनी और उनके पार के विजित क्षेत्र, जिन पर प्रायः 15-45 साल तक नेपाल का कब्जा था, खाली करना पड़ा। स्मरणीय है कि ये क्षेत्र (यानी अल्मोड़ा, गढ़वाल और सिक्कम और दार्जिलिंग) कभी भी परम्परागत रूप से नेपाली राज्य के नहीं थे। परन्तु आज भी नेपाल के कुछ सांस्कृतिक विस्तारवादी बृहद् नेपाल (Greater Nepal) की कल्पना करते नहीं थकते; जिसमें सतलुज से तीस्ता तक की भूमि की भारतवर्ष से वापसी की अपेक्षा की जाती हे।

1816 से अगले तीन दशक नेपाल के इतिहास में लुडविग स्टेलर (Ludwig Steller) के मुताबिक सुसुप्त वर्ष (silent years) माने जाते हैं। परन्तु कहानी कुछ और ही है। गोरखा नरेश राजेन्द्र शाह की माता और विमाता, वरिष्ठ और कनिष्ठ महारानियों, सरदारों, भीमसेन थापा और आतंबर सिंह थापा, के बीच दरबारी षड्यंत्र इतना बढ़ गया कि इसकी परिणति 14 सितम्बर, 1846 की रात में राज्यपरिषद् की जघन्य हत्या (Court or Kot Massacre) में हुई। इस हत्याकांड में तत्कालीन मुखिया फतहजंग समेत 30 सभासदों की हत्या हुई और उनके 6000 परिजनों को नेपाल से निर्वासित कर दिया गया। बताया गया है कि इस हत्या का सूत्रधार राणा जंग बहादुर कुँवर था, जिसे आतंकित नरेश दम्पत्ति ने तत्क्षण प्रधानमंत्री का पद सौंप कर राहत की साँस लेनी चाही। कालान्तर में राणा जंग बहादुर ने नेपाल नरेश को नाममात्र के लिए सार्वभौम नरेश रखा और अंग्रेजों के सह पर दुनिया का अत्यन्त ही खूंखार प्रशासन तंत्र, राणाशाही को प्रचलित किया। जंगबहादुर से मोहन शमशेर तक 105 वर्षों के राजशाही में नव प्रधानमंत्री हुये। यह नेपाल के इतिहास का अत्यन्त ही क्रूर, दकियानूस, प्रतिक्रियावादी और दमनकारी युग माना जाता है। यों कहने को राणाओं

का वर्चस्व था। पर विडम्बना यह हे कि उनमें भी एक वर्ग ने सारे विशेषाधिकार हथिया लिया था। यहाँ तक कि कालान्तर में राणा जंग बहादुर के वंशजों को भी उन विशेष अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। यह तिकड़म राणाओं को A, B, C तीन वर्गों में बांट कर प्रधानमंत्री एवं सेवाध्यक्ष आदि के मुख्य पद A क्लास के राणाओं के लिए, तथा C वर्ग के राणाओं को दूरदराज के जिलों में छोटे-मोटे पद दे दिये गये थे। कहना न होगा कि राणाओं के इस वंचित वर्ण ने राणाशाही के विरूद्ध प्रजातांत्रिक शक्तियों का साथ दिया।

राणाओं ने नेपाल को एक तरह से अपनी पारिवारिक सम्पत्ति बना डाला था। इन्होंने आँख मूंद भारत में औपनिवेशिक अफसरशाही का समर्थन किया। इसका आरम्भ राणा जंग बहादुर ने खुद 1857 के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के विरूद्ध अपनी सेना के साथ गोरखपुर की सफर की और अंग्रेजों का पुरजोर समर्थन किया। अंग्रेजों ने पारितोषिक स्वरूप पश्चिमी नेपाल तराई के चार जिले राणा जंग बहादुर को सुपुर्द किया, जिसे उसने अपनी पारिवारिक सम्पत्ति बना ड़ाला। राणाओं ने अपने लिए शिक्षण, प्रशिक्षण, विलास और सुविधाओं का प्रावधान किया। परन्तु नेपाल नरेश का परिवार प्रायः बन्दी का जीवन व्यतीत करता था। उचित शिक्षा, प्रशिक्षण, सम्पर्क आदि के अभाव में नेपाल नरेश मानसिक रूप से पंगु बन कर रहे गये थे। उन पर पकड़ बनाये रखने के लिए उन्हें जबरन राणा कन्याओं से विवाह रचाना पड़ता था। उदाहरणार्थ त्रिलोक विक्रमशाह राणा जंग बहादुर के तीन पुत्रियों के पति थे और उनके पोते महेन्द्र विक्रम शाह राणा युद्ध शमशेर की दो पुत्रियों के पति थे। नेपाल नरेशों को विधिवत शिक्षा नहीं दी जाती थी। फलस्वरूप त्रिभुवनवीर विक्रमशाह (1911-1955) और महेन्द्र विक्रम शाह (1955-1972) का किसी प्रकार की शिक्षा की विधिवत डिग्री नहीं थी। शायद यही कारण था कि ये दोनों नरेश मानसिक ग्रंथी के शिकार बन गये। वे अपने को इतने असुरक्षित समझते थे कि उनका व्यवहार प्रायः सामान्य नहीं हो पाता था। इस संदर्भ में स्मरणीय है कि 6 नवम्बर, 1950 से अपने दिल्ली प्रवास में नेपाल नरेश त्रिभुवन अतिशय शराब पीकर होटलों में नाचने लगते थे, जिसकी चर्चा पंडित जवाहरलाल नेहरू ने विश्वेशर प्रसाद कोइराला से की थी। तत्कालीन प्रधानमंत्री राण मोहन शमशेर को त्रिभुवन वीर बिक्रम शाह पिता तुल्य मानते थे; परन्तु इसके आतंक में जीते थे। अगर उनका वश चलता तो वे अपने प्रधानमंत्री को पदच्युत कर देते (चटर्जी, भोला : 1980:82)। नेपाली प्रशासन पर पकड़ बनाये रखने के लिए राणाओं ने दो दूरगामी कदम उठाये, जो एक-दूसरे के पूरक थे। प्रथमतः राणाओं ने हिन्दु धर्म - सनातन धर्म - को नेपाल का राष्ट्र धर्म घोषित किया। द्वितीय, धर्मशास्त्रों से प्रभावित ऊँच-नीच और छुआछूत आदि सामाजिक विषमता को मजबूत करने के लिए 'मुल्की आईन' (Mulki Ain, ... Civil Code),

1854 में व्यवस्था दी। इस व्यवस्था के अनुसार सत्ता-सामन्तों ने नेपाल की भूमि पर अवस्थित सभी समुदायों को एक अखिल नेपाल जाति व्यवस्था मूलक शृंखला में पिरो डाला। मुलकी आइन के मुताबिक द्विज जातियां (तागाधारी) को सर्वोपरि और अछूतों (पानी नाचाल्या छोड़-छीतो पालनुपारन्या) को निम्नतम श्रेणी में रखा गया और बीच में अन्य तीन वर्णों की व्यवस्थायें की गयी : नामाशिया अतवाली (वे जातियाँ जो शराब पी सकती थीं, परन्तु उन्हें दास नहीं बनाया जा सकता था), मांशिया मतवाली (जो शराब पी सकती थी, परन्तु उन्हें दास बनाया जा सकता था) तथा अछूत, परन्तु वे जातियाँ, जिनका दिया हुआ पानी द्विज स्वीकृत कर सकते थे (पाणी ना चालान्या छोई-छीटो हालनुनानान्या)। वैवाहिक, सामाजिक असमानता तथा भोजनादि की शुद्धता पर आधारित यह जाति-व्यवस्था पूरे नेपाल में देव-प्रदत्त संविधान के रूप में प्रतिष्ठित की गयी थी। व्यवस्था की अवहेलना करने पर कठोर डढ की मान्यता दी गयी थी। स्मरणीय है कि नेपाल के बाहर भी प्रवासी नेपाली इसी व्यवस्था के द्वारा नियंत्रित होते थे। नेपाल नरेश महेन्द्र ने मुंल्की आइन के कुछ प्रावधानों को 1963 में निरस्त कर दिया था। परन्तु यह व्यवस्था जनान्दोलन, 1990 तक लागू रही।

राजनैतिक सुगबुगाहट और पहल

राणाशाही का प्रयास था कि तेजी से बदलती दुनिया से अलग नेपाल को अपनी निजीगत जागीर बनायी रखी जाय। स्वाभाविक है कि वहाँ जन-स्वास्थ्य, आम शिक्षा और आवागमन के साधनों का विकास नहीं किया गया। राणाचन्द शमशेर (1901-1929) ने अपने पूर्ववर्त्ती प्रधानमंत्री, देव शमशेर, द्वारा स्थापित चन्द प्राथमिक पाठशालाओं को भी बन्द कर दिया। यह वही सज्जन थे, जिन्होंने ब्रिटेन के साम्राट पंचम जार्ज को नसीहत दी कि अंग्रेजों ने भारतीयों को शिक्षा देने की गलत की; फलस्वरूप राष्ट्रवादियों की चुनौती उन्हें झेलनी पड़ रही है। अत्यन्त चौकसी के बावजूद नेपाली जनता में राजनैतिक सुगबुगाहट शुरू हो गयी थी। 1930 के दशक में 'नेपाल प्रजा परिषद' नामक गुप्त दल ने राणाशाही के विरूद्ध नेपाल नरेश से सम्पर्क करने की कोशिश की। कुछ उत्साही कार्यकर्त्ताओं ने डुपलेकेटींग (Duplicating) मशीन की सहायता से इश्तहार निकालकर राणाओं के विरूद्ध विद्रोह करने के लिए जनता का आह्वान किया। परन्तु इस प्रकरण में संलग्न व्यक्तियों का सुराग प्रशासन को लग गया। फलस्वरूप चार सदस्यों को फाँसी दे दी गयी और परिषद् अध्यक्ष, टंक प्रसाद आचार्यो को, ब्राह्मण होने के कारण फाँसी न देकर कारावास में डाल दिया गया।

ज्ञात हो कि नेपालियों का एक वर्ग, जो भारत में शिक्षा, व्यवसाय या आजीविका के संदर्भ में निवास करता था, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से प्रभावित होकर राजनैतिक रूप से सक्रिय था। कुछ समाज सुधारक के रूप में, कुछ साहित्य और

पत्रकारिता के माध्यम से और अन्य छद्म रूप से राणा विरोधी आयोजन करते थे। स्वाभाविक है अधिकतर की सहानुभूति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ थी। परन्तु कुछ साम्यवादी भी थे। बिशेश्वर प्रसाद (B.P.) कोइराला, जो कांग्रेस में होते हुए भी कांग्रेस समाजवादी दल के सक्रिय सदस्य थे, को बी.पी. कोइराला सरीखे समाजवादी विचारधारा मानने वाले राजकीय कार्यकर्त्ताओं ने नेपाल की क्रूर राणाशाही के विरूद्ध सशस्त्र क्रांति का रास्ता अपनाया। कालान्तर में सशस्त्र क्रान्ति के लिए धन की व्यवस्था मुख्यतः असंतुष्ट प्रवासी राणाओं ने की। हथियार बर्मा से प्राप्त किये गये और नेपाल के भारतीय पड़ोसी राज्य, बिहार, बंगाल और उत्तर प्रदेश की जनता और सरकारों ने पुरजोर समर्थन किया। कलकत्ता, दार्जिलिंग, पटना, बनारस और नेपाल से आये कार्यकर्त्ताओं ने जनवरी, 1947 में नेपाल कांग्रेस की स्थापना कलकत्ते में की। प्रतीकात्मक रूप से नेपाली जेल में बन्द टंक प्रसाद आचार्य को अध्यक्ष और बी.पी. कार्यकारी अध्यक्ष चुने गये। स्मरणीय है कि बी.पी. और उनके साथी नेपाल की राणा विरोधी मुहिम को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के संदर्भ में ही देखते थे। वे स्वयं समाजवादी दल के सक्रिय सदस्य के रूप में वे भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों के साथ जेल जा चुके थे। फलस्वरूप उनका भारतवर्ष के चोटी के नेताओं - जवाहरलाल, राजेन्द्र प्रसाद, जयप्रकाश नारायण, जगजीवनराम, श्रीकृष्ण सिन्हा आदि से निकट का सम्बन्ध था। बी.पी. के पिता–कृष्ण प्रसाद–एक विलक्षण व्यक्ति थे, जो शिक्षण और रचनात्मक कार्यों में व्यस्त होने के बावजूद, निर्भय समाजसुधारक और छोटे-मोटे उद्यमी थे। अपने आदर्शों के चलते उन्होंने नेपाल से निर्वासित होना पड़ा और उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। इस स्वाभिमानी व्यक्ति ने अत्यन्त गरीबी में अपने परिवार का भरण-पोषण और शिक्षण पूरा किया। संभवतः के.पी. कोइराला दुनिया के एकमात्र पिता हैं, जिनके तीन पुत्र (मातृका, विश्वेश्वर और गिरिजा) कालान्तर में अपने देश के प्रधानमंत्री बने।

नेपाली कांग्रेस ने धन, जन, शस्त्र इकट्ठे किये और 1950 में राणाशाही के विरूद्ध मुक्तिसंग्राम छेड़ दिया। इस संघर्ष में नेपाल की तराई की जनता के साथ उत्तर बिहार के अनगिनत स्वयंसेवकों ने भाग लिया। यह मुक्ति संग्राम मुख्यतः पूर्वी और मध्य तराई में लड़ा गया और उसमें मुक्ति सेना ने पर्याप्त सफलता भी प्राप्त की। (रणु, फ. न. : 1977)। मुक्ति संग्राम का एक वर्ग महाराजा त्रिभुवन के सम्पर्क में था और राणाशाही से निजात पाने के लिए आतुर नेपाल नरेश ने मौका पाकर नवम्बर 6, 1950 को पिकनिक जाने के बहाने सपरिवार काठमांडु स्थित भारतीय दूतावास में शरण ली। महाराजा की अपील पर भारत सरकार ने उन्हें राजनैतिक शरण दे दी। क्रोध से पागल नेपाल का प्रधानमंत्री राणा मोहन शमशेर नेपाल नरेश के चार वर्षीय पोते को सिंहासनरूढ़ कर विधिवत दरबारियों से रस्म अदा कराकर अंतर्राष्ट्रीय

मान्यता की अपील करता है। यह वही सज्जन ज्ञानेन्द्र वीर बिक्रमशाह है, जिनका लगभग पांच दशक बाद अपने बड़े भाई वीरेन्द्र के सपरिवार हत्या के बाद दुबारा सिंहासन सम्पन्न हुआ और उन्हें शाह वंश के अन्तिम नेपाल नरेश होने का गौरव प्राप्त हुआ। परन्तु राणाओं के लाख कोशिश के बावजूद किसी भी विदेशी सरकार ने त्रिभुवन के कठपुतली उत्तराधिकारी को मान्यता नहीं दी।

एक तरफ उपरोक्त् कूटनीतिक संघर्ष चल रहा था, तो दूसरी तरफ, नेपाली कांग्रेस की मुक्ति सेना राणा प्रशासन को परास्त कर एक के बाद एक मोर्चों पर विजय पा रही थी। इस दोहरी मार से खोखली राणाशाही ने सुलह की पहल की। फलस्वरूप नेपाल नरेश त्रिभुवन, नेपाली कांग्रेस और राणाओं के बीच दिल्ली के एक त्रिपक्षीय समझौता हुआ, जिसके अनुसार नेपाल नरेश विधिवत काठमांडु राष्ट्राध्यक्ष के रूप में वापस आये; राणा मोहन शमशेर प्रधानमंत्री बने रहे, परन्तु एक साझी सरकार के। यह खिचड़ी सरकार नहीं चलनी थी, सो नहीं चल पायी। इस राजनैतिक उठापटक के बाद नेपाली जनता की उम्मीदें आसमान छू रही थीं। परन्तु अनुभवहीन नेपाल नरेश, प्रतिक्रियावादी राणाओं और उद्धत नेपाली कांग्रेस के बीच किसी प्रकार का समन्वय नहीं बन पाया। नया संविधान, नया चुनाव, प्रशासकीय, आर्थिक और सामाजिक सुधार के वादे किये गये, परन्तु उन्हें भुला दिया गया। नरेश, राणा और राजनैतिक दल सभी आधिकारिक पदों पर बैठने को आतुर थे; परन्तु जनता की समस्यायों की तरफ किसी की नजर नहीं थी। फलस्वरूप अव्यवस्था, अराजकता और अनिश्चियतता बढ़ती गयी। 1950 के दशक में कई सरकारें बनीं और पदच्युत हुई। अंत में एक सीमित संविधान के आधार पर मार्च 1959 को पहला आम चुनाव हुआ। केन्द्रीय प्रतिनिधि सभा की 109 में से 74 स्थानों पर विजय प्राप्त कर नेपाली कांग्रेस के नेता बी.पी. कोइराला प्रधानमंत्री बने। तब तक 1955 में नेपाल नरेश त्रिभुवन की मृत्युपर्यन्त उनके पुत्र महेन्द्र विक्रमशाह नेपाल नरेश थे। कोइराला के समाजवादी रुझान और महेन्द्र के अधिनायकवादी विचारों में शीघ्र ही टकराव होने लगा। दिसम्बर, 1960 को प्रतिनिधि सभा भंग कर दी गयी; मंत्रीगण बन्दी बना लिए गय और प्रशासन की बागडोर नेपाल नरेश ने खुद अपने हाथों में ली। चन्द वर्षों में तथाकथित नेपाली परम्परा सम्मत पंचायती प्रशासन व्यवस्था लागू की गयी। पंचायत प्रणाली में मंत्रीमंडल बनते रहे और बिगड़ते रहे। महाराजा को देशभक्तों की नहीं राजभक्त की तलाश थी। फलस्वरूप मंत्री-परिषद् जनकल्याण के स्थान पर रागदरबारी अलापते रहे। राजनैतिक दल गैरकानूनी करार दे दिये गये। राजनैतिक संगठन और उनसे जुड़ी गतिविधियाँ देशद्रोह करार कर दी गयी। नेपाल को पश्चिमी पर्यटकों की क्रीड़ा स्थली में बदल दिया गया। यह प्रतिगामी प्रकरण 1960 से 1990 तक चला और इसकी परिणति प्रथम जनान्दोलन, 1990 में हुई, जिसने नेपाल की राजनैतिक तस्वीर ही बदल दी।

प्रथम जनान्दोलन, 1990

नेपाली कांग्रेस के प्रधानमंत्री बी.पी. कोइराला की बरखास्तगी और बन्दी बनाये ज़ाने से लेकर 1990 तक के तीन दशक नेपाल नरेश महेन्द्र और उनके पुत्र बीरेन्द्र के एकछत्र राज्य के वर्ष थे। नेपाल नरेश निर्विवाद रूप से एकमात्र सत्ता सम्पन्न बन गये। राजनैतिक दल तो पहले ही असंवैधानिक करार दे दिये जा चुके थे। परन्तु विभिन्न दलों के अवसरवादी नेता नरेश से क्षमा मांग कर पंचायत पद्धति के समर्थक बन बैठे। फिर तो ऐसे व्यक्तियों को नेपाल नरेश पदासीन करते और पदच्युत करते रहे। भूतपूर्व प्रधानमंत्री बी.पी. कोइराला क्रमशः बन्दीगृह, अस्पताल या निर्वासन में जीवन बिताते रहे। पर्यटन उद्योग तो चमका, परन्तु उसके नकारात्मक परिणाम भी उजागर होने लगे। बड़े पैमाने पर वातावरण प्रदूषण। सामान्य जनता गरीबी की चक्की में पीसती रही। कुछ तो देशी-विदेशी फौजों में जाते; कुछ बोझिल कुली बनते; अन्य काम की तलाश में सरहद पाकर भारतवर्ष में निम्नतम आय वाले कार्यों में लगते। यहाँ तक कि नेपाल की निरक्षर ग्रामीण लड़कियों को वेश्यावृत्ति में लगाया जाने लगा। शिक्षा तो बढ़ी; परनतु उसके साथ शिक्षित बेरोजगार भी बढ़े। राजनैतिक क्रियाकलापों पर नहीं, सम्प्रेषण और संचार माध्यम पर भी पाबन्दी थी। ऐसी स्थिति में असंतोष का बढ़ना स्वाभाविक था। संशय बढ़ रहा था और बढ़ रही थी जन-चेतना। दूरदराज की जनजातियों में सुगबुगाहट और सामाजिक अस्थिरता बढ़ रही थी। धार्मिक बंधन, सामाजिक रूढ़ियाँ, मुल्की आइन की स्थापना बदलते समय में समाज को बांध रखने में अक्षम सिद्ध हो रही थी। ऊपर से नेपाल के सत्ता सामन्त अपने लुभावने नारे 'एक देश, एक नरेश, एक भाषा, एक भेष' की एक रूपल छवि स्थापित करने पर ही तुले थे। इस बार जनता ने अपनी मांगों की फेहरिस्त नहीं बनायी; बल्कि नरेश दम्पत्ति की सार्वजनिक खिल्ली उड़ायी; उनके पुतलों को जूते मारे और राजपरिवार की शाही ऐय्याशी की सार्वजनिक भर्त्सना की। हिन्दू धर्म, नेपाली भाषा और राजशाही के प्रति एक वर्ग ने अपना रोष जताया और जाहिर किया कि यदि ये तीनों नेपाली राष्ट्र के प्रतीक हैं, तो ऐसे राष्ट्र में उनकी कोई साझीदारी सम्भव नहीं है। जनान्दोलन इतना न व्याप्त और उग्र हो चला कि नेपाल नरेश को एक नया संविधान के लिए सहमत होना पड़ा। अब नेपाली जनता और नेपाल नरेश दोनों ही नेपाल के संयुक्त सत्ता-स्तम्भ माने गये। स्वाभाविक है कि प्रजातंत्र की बहाली हुई। चुनाव हुए और मंत्रीमंडलीय व्यवस्था लागू की गयी। नरेश मात्र संवैधानिक राष्ट्राध्यक्ष रह गये। नेपाल को धर्म-निरपेक्ष राज्य माना गया; परन्तु नेपाल को हिन्दू राज्य और हिन्दू धर्म को राजधर्म भी बताया गया।

जनान्दोलन के पहले ही जनजातियों में राजनैतिक सुगबुगाहट आरम्भ हो गयी थी। दूरदराज के पर्वतों और जंगलों में रहने वाली जनजातियाँ नेपाल की स्थापित

संस्कृति - पहाड़ी ब्रम्हण - छेत्री - नेवार - संस्लिष्ठ - में उनकी भागीदारी कम थी। उसी प्रकार नेपाल तराई के 'मधेशी' प्रशासनिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और भाषाई भेदभाव से तंग आ चुके थे। नेपाली हिन्दुओं में अछूत समझी जाने वाली जातियाँ भी सामाजिक प्रताड़ना से आक्रांत थी। इन सबों को अपने पड़ोसी देश भारत में व्याप्त संवैधानिक अवधारणायें अपील करती रहीं, यथा अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति और विशेष पिछड़े सीमान्तीय क्षेत्र। फिर क्या था? देखते-देखते नेपाल जनजाति महासंघ (Nepal Federation of Nationalities - NEFEN) की स्थापना हुयी और 59 इकाइयों का यह महासंघ अपने मांगों को लेकर आन्दोलित हो उठा। उसी प्रकार दलित वर्ग भी आगे आया और आन्दोलन के रास्ते पर चल पड़ा। ये आन्दोलन चल ही रहे थे कि नेपाल का साम्यवादी दल (माओवादी) अपने 40 सूत्री मांगों को लेकर सरकार को अल्टीमेटम दे बैठा। परन्तु मांगों की पूर्ति की समय-सीमा समाप्त होने के पहले ही दल ने सशस्त्र क्रान्ति का नारा दिया और सुरक्षा सैनिकों को परास्त कर पश्चिमी सीमान्तीय जनपदों में अपने लिये मुक्त क्षेत्र (Liberated zone) की घोषणा कर डाली। माओवादियों ने अपने को चीनी मुक्तिवाहिनी के समान सशस्त्र वर्दीधारी सैनिकों के रूप में संगठित किया और सरकारी प्रतिष्ठानों और तथाकथित सर्वहारा विरोधी परिवारों की सम्पत्ति को ध्वस्त किया, लूटा, जलाया और विरोध करने पर हत्यायें भी कीं। आवागमन के रास्ते, सरकारी कार्यालय, बैंक, स्कूल, अस्पताल और अन्य संस्थान–सभी तोड़फोड़ या जला डाले गये और इन मुक्त क्षेत्रों में मुक्ति अदालतें स्थापित की गयीं।

द्वितीय जनांदोलन, 2006

दूसरी तरफ प्रजातंत्र का यह हाल था कि 20वीं सदी के अंतिम दशक में कितने प्रधानमंत्री बने, इसका हिसाब रखना बेमानी है क्योंक प्रत्येक चुनाव एक भोंडी प्रतिनिधि सभा पेश करता रहा और सरकारें बनती और गिरती रहीं। ऐसी स्थिति में माओवादियों की चुनौती स्वीकार करे तो कौन? इन सभी विकट समस्याओं से क्षणिक निजात पाने के लिए एक अजीबोगरीब घटना जून 1, 2001 को घटी। रात्रिभोज के दौरान नेपाल नरेश बीरेन्द्र विक्रमशाह अपने समस्त परिवार के साथ एक भीषण गोलीबारी में मारे गए। घायल युवराज दीपेन्द्र ने दूसरे दिन दम तोड़ा। ऐसी स्थिति में मृत नेपाल नरेश के छोटे भाई 56 वर्षीय ज्ञानेन्द्र वीर विक्रम शाह की ताजपोशी सनातनी हिन्दू परम्परा के अनुसार की गयी। स्मरणीय है कि यह वही सज्जन है जिन्हें नवम्बर, 1950 में तत्कालीन राणा प्रधानमंत्री मोहन शमशेर ने नेपाल नरेश त्रिभुवन के भारत पलायन के समय सिंहासनारूढ़ किया था, जो कदम अमान्य हुआ और त्रिभुवन बाजाब्ता नेपाल नरेश बने रहे। अपने अग्रज के सौम्य व्यक्तित्व के विपरीत ज्ञानेन्द्र की जनसाधारण में एक उदंड व्यवसायी की छवि रही है।

सिहानारूढ़ होने के उपरान्त देश की अत्यन्त ही दयनीय स्थिति में ज्वलन्त समस्याओं से जूझने के स्थान पर नये नरेश ने शाही परिवार के वर्चस्व को पुनः प्रतिष्ठापित करने की प्रमुखता दी। एक तरफ तो माओवादी मुक्तक्षेत्र बनाने में व्यस्त थे, तो दूसरी तरफ नरेश ने प्रतिनिधि सभा भंग कर दी; प्रधानमंत्री को निकम्मा बता कर पदच्युत कर दिया और देश का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया। महाराजा के इस कदम का चतुर्दिक विरोध हुआ। प्रजातंत्र में विश्वास करने वाली सात राजनैतिक पार्टियों के गठजोड़ ने महाराजा के विरूद्ध जनान्दोलन छेड़ दिया। इस आंदोलन में राजनैतिक कार्यकर्त्ता ही नहीं, वकील, डाक्टर, अध्यापक, व्यवसायी, इंजीनियर, पत्रकार - आदि सभी वर्ग के लोगों ने भाग लिया। उन दिनों पूरे नेपाल में जनजीवन प्रायः ठप्प था। यातायात कर्मियों के आंदोलन में शामिल होने से नेपाल में उपभोक्ता वस्तुओं का अभाव हो चला। पेट्रोल, गैस और मिट्टी के तेल की आपूर्ति प्रायः ठप्प हो चली। सामान्य जनता का जीवन दूभर हो चला और गृहणियों को घर चलाना मुश्किल हो रहा था। इस विकट समस्या की परिणति अप्रैल, 2006 के जनान्दोलन के रूप में हुई। आक्रोशित जनता ने शाही सैनिकों के घेरेबन्दी के बावजूद राजप्रसाद पर धावा बोला। लाठियां चली; आंसू गैस छोड़े गये, गोलियां भी चली; परन्तु जनता पीछे नहीं मुड़ी। लाचार नेपाल नरेश को प्रतिनिधि सभा बहाल करनी पड़ी; वयोवृद्ध गिरिजा प्रसाद कोईराला को प्रधानमंत्री बनाकर प्रशासन सौंपना पड़ा। सात राजनैतिक दलों के गठजोड़ ने एक अंतरीय सरकार बनायी। और तो और, माओवादियों को समझाबुझा कर सरकार और संसद में भाग लेने पर राजी किया गया और उनसे हथियार डलवाये गये।

अन्तरिम सरकार, कामचलाऊ संविधान और वंचितों क़ी समस्या

द्वितीय जनान्दोलन ने नेपाल की परम्परागत छवि ही बदलकर रख दी। जनता की मांग पर नयी सरकार ही नहीं बनी, भंग की हुई प्रतिनिधि सभा भी बहाल कर दी गयी। काफी विचार-विमर्श के बाद एक अंतरीय संविधान 15 जनवरी, 2007 को लागू किया गया। नये संविधान के अनुसार नेपाल एक धर्मनिरपेक्ष, सर्वसमावृत्ति और पूर्ण प्रजातांत्रिक राज्य होगा। तत्कालीन एकल और केन्द्रीकृत (Centralized and unitary form) पद्धति को समाप्त कर एक सार्वभौम, प्रजातांत्रिक और प्रगतिशील राज्य (an inclusive, democratic and progressive restructuring of the state) की संरचना करने का भार नयी संविधान निर्मात्री सभा को दिया गया। संविधान सभा के संगठन के लिए एक मिश्रित व्यवस्था की कल्पना की गयी, जिसमें 330 सदस्यों की अंतरिम प्रतिनिधि सभा (पुराने प्रतिनिधि सभा के निर्वाचित सदस्य - 209 नये नामजद माओवादी - 73 विभिन्न नगरीक संस्थाओं के आठ राजनैतिक दलों द्वारा चुने हुये

प्रतिनिधि - 48) और अन्य विभिन्न सामाजिक गणकों के आनुपातिक प्रतिनिधि - कुल 330 होंगे। इस व्यवस्था के प्रति तराई निवासी मधेशियों ने सख्त एतराज किया। उनके अनुसार पुरानी प्रतिनिधि सभा यथार्थ सामाजिक अनुपात के अनुसार नहीं है और उसमें तराई की उपेक्षा का पहाड़ियों की प्रमुखता है। उदाहरणस्वरूप 330 सदस्यों की प्रतिनिधि सभा में मात्र 121 सदस्य तराई क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनमें भी मात्र 55 मदेशी हैं। स्वाभाविक है कि ऐसी प्रतिनिधि सभा मदेशियों के हितों की रक्षा नहीं कर पायेगी। ऐसी उथल-पुथल की स्थिति में मदेशी समुदाय अपने भविष्य के प्रति चिन्तित हो अदिग्न हो उठा। मदेशियों का पिछला अनुभव जाहिर करता है कि नेपाल के विभिन्न दलों के नेता नेपाली राष्ट्रीयता को पहाड़ी संस्कृति से जोड़कर देखने के आदी हैं। फलस्वरूप मदेशी हितों की जानबूझकर अनदेखी कर दी जाती हे। इस बार कुछ ऐसी मानसिकता बनी कि 'करो या मरो' की स्थिति आ गयी। प्रायः सभी नेपाली राष्ट्रीय दलों के मदेशी नेताओं ने अपने दलों का त्याग कर मदेशी समुदाय के साथ जुड़ना श्रेयकर समझा।

स्मरणीय है कि नेपाली कांग्रेस का 1950 संग्राम तराई से ही आरम्भ हुआ था और तराई निवासियों के बल पर ही कांग्रेस प्रमुख दल बन पाया। उसी प्रकार विभिन्न साम्यवादी दलों के मुख्य समर्थक मदेशी ही थे। यहां तक 2002 में माओवादियों ने मधेशी राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चो (Madesi National Liberation Front : MNLF) बनाकर मदेशियों का समर्थन पाने का प्रयास किया था। नेपाल नरेश का वर्चस्व तो समाप्त प्राय था; परन्तु इस अनिश्चिय की स्थिति में उपरोक्त राष्ट्रीय दलों के नेता फिर वही पुराने अंदाज में मधेशी हितों को अनदेखी किये जा रहे थे। अपनी उचित आवाज की अपेक्षा होते देख मधेशियों ने शीघ्र ही मधेशी जनाधिकार फोरम (Madeshi Janadhikar Forum - MFJ) के साझा मंच के माध्यम से अपना आन्दोलन जारी रखा। फिर तो तराई मुक्ति मोर्चा (Janatantrik Tarai Mukti Morcha - Jawala Singh and Goit Factions) के हथियारबन्द दो दलों ने मैदान सम्भाला। नेपाल सरकार, विशेषकर उसके गृहमंत्री ने मधेशी जनाक्रोश को असामाजिक तत्वों, प्रतिक्रियावादियों की शरारत, राजशाही के दलालों की साजिश या (भारतीय) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से संबंधित देशद्रोहियों का षड्यंत्र बताया। माओवादियों ने, जो अब तक सरकार में भागीदार बन चुके थे, पूरे मधेशी आक्रोश को असामाजिक तत्वों की शरारत बताया। फिर तो देखते-देखते मदेशी आक्रोश चिंतनीय हिंसा में बदल गया। सुरक्षा कर्मियों के बल प्रयोग का उल्टा असर हुआ। मार्च, 2007 में माओवादियों और मदेशी जनाधिकार फोरम के बीच भिडंत हुई जिसमें मदेशियों ने लाठियों से अपने प्रतिद्वन्द्वियों का स्वागत किया। फलस्वरूप 27 जनों ने जान गवायीं और 47 बुरी तरह घायल हुये। लाचार प्रधानमंत्री कोइराला को मधेशियों की कुछ मांगों को मानना पड़ा, यथा नागरिकता संबंधी मांग।

कई बार स्थगित होने के बाद अप्रैल 10, 2008 को संविधान सभा के लिए चुनाव हुये। परिणाम कुछ ऐसे आये कि सारी दुनिया चौंक उठी। कल के हथियारबन्द हिंसक माओवादी तीस प्रतिशत मत और लगभग आधे निर्वाचित स्थानों पर जीत कर सरकार बनाने के दावेदार बन बैठे। कल तक नेपाली राजनीति की मुख्यधारा के दल - नेपाली कांग्रेस और साम्यवादी पार्टी - 21.14 प्रतिशत और 20.33 प्रतिशत मत पाकर क्रमशः दूसरे और तीसरे स्थान पर आये। परन्तु इन तीनों दलों के बाद मदेशी जनतांत्रिक मोर्चा (MJF) का आना नेपाली राजनीति के परम्परागत खिलाड़ियों को नागवार लगा। ऊपर से तुर्रा ये कि तराई मदेश लोकतांत्रिक पार्टी, नेपाल सद्भावना पार्टी तथा अन्य तत्व भी मदेशी अधिकारों के पक्षधर के रूप में संविधान सभा में उपस्थित होंगे। काफी जदोजहद के बाद माओवादी नेता पुष्प कमल दहान 'प्रचंड' ने दूसरी अन्तरीय सरकार बनायी। इस नयी सरकार को राजशाही से सम्भाविक प्रजातांत्रिक संक्रमण की तैयारी और देश के लिये नये संविधान बनाने की जिम्मेदारी निभानी है।

नयी सरकार के बनते-न-बनते अंतिम नेपाल नरेश ज्ञानेन्द्र को राजप्रसाद छोड़ना पड़ा। राजशाही के अन्त के बाद राष्ट्राध्यक्ष के पद के लिए राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति की परिकल्पना की गयी। माओवादी संवैधानिक सरकार तो बना पाये, परन्तु मुख्य विषयों पर राष्ट्रीय सहमति नहीं बना पाये। दूसरे जनान्दोलन ने जो ज्वलन्त प्रश्न उठाये थे, उनका समाधान पाना कठिन हो रहा है और माओवादी अपनी मान्यताओं और कार्यशैली से सभी राजनैतिक विचारधाराओं को साथ लेकर आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं। समझौते के विपरीत माओवादी युवक मोर्चा (Young Communist League) अभी भी हथियारबन्द है; माओवादियों ने अपने सभी हथियार राष्ट्रसंघ के केन्द्र को नहीं सौंपे हैं; जनता की लूटी हुई सम्पत्ति माओवादियों ने वापस नहीं की है; माओवादी गोरिल्ले नेपाली सेना में विलीन नहीं हुए हैं और मदेशियों और जनजातियों की समस्यायें ज्यों की त्यों पड़ी हुई हैं। इस प्रकार आधुनिक नेपाल में माओवादी खुद ही एक समस्या बने पड़े हैं। फिर भी सभी कुछ स्थिर नहीं है। राणाशाही के अन्त के 6 दशकों में ही शाहवंश का सफाया हो गया। उसी प्रकार छः दशक पुराना संविधान बनाने का सपना पूरा होता दिख रहा है। सत्ता सुख से वंचित जनजातियों के सदस्य मंत्री परिषद के सदस्य हैं। और कल तक के तिरस्कृत मदेशी आज नेपाल के तीन प्रमुख पदों पर आसीन है : राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और परराष्ट्रमंत्री। परंतु जटिल प्रश्न सामने मुंह बाये खड़ा है : राजतंत्र तो गया, परन्तु अब कौन सा तंत्र आयेगा : प्रजातंत्र या माओतंत्र?

नयी दिशायें और नयी समस्यायें

नेपाल एक अभूतपूर्व संक्रमण काल से गुजर रहा है। पिछले वर्षों में नेपाली पटल पर अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं। प्राचीन गौरव स्तम्भ एक के बाद धराशायी हो

चले हैं और नये राष्ट्रीय प्रतीकों की तलाश जारी है। राणाओं के क्रूर अमानवीय क्रियाकलाप उनके पतन के बाद भुला दिये गये। शाहवंशीय गोरखा नरेशों की गाथाएं उनकी विजय अभियान के किस्से, उनका नेपाल को एकमात्र हिन्दू राजतंत्र थे प्रतिष्ठित करना तथा नरेश का भगवान विष्णु के रूप में सम्मानित होना—सभी राजवंश के अन्त के बाद अनाकर्षक अनर्गल सा लगता है। अब तो जनजातियाँ और तराई के मधेशी नेपाल की राष्ट्रभाषा को भी राष्ट्र प्रतीक रूप में मानने को तत्पर नहीं है। परन्तु पहाड़ी मूल के सत्ता-सामन्तों की परम्परागत धारणायें नहीं बदले पा रही हैं। नयी सरकार के सामने विधान निर्माण निश्चित रूप से अत्यावश्यक हे। साथ ही साथ अन्य विकट समस्यायें टाली नहीं जा सकती : यथा आर्थिक और सामाजिक संरचना; आवागमन के संसाधनों का पुर्ननिर्माण और न्याय और सम्मान से वंचित मदेशियों और जनजातियों को राष्ट्र की मुख्यधारा में सहभागी बनाना। नेपाली राष्ट्र के इन दो समुदायों को पहाड़ी मूल के परम्परागत सत्ता सामंतों के वादों पर विश्वास नहीं होता, क्योंकि पिछले 6 दशकों से इनके साथ वादाखिलाफी की जाती रही है। ऐसा क्यों होता रहा?

स्मरणीय है कि नेपाली राष्ट्रीय मानस जनजातियों और मदेशियों को सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से नेपाली राष्ट्रीयता के पहाड़ी स्वरूप का अपवाद मानता है। स्वाभाविक है कि उपरोक्त समुदाय भी भेष भाषा, व्यवहार और प्रचलन में अपने को पहाड़ी परम्परा से अलग पाते हैं। इस प्रकार एक मानसिक खाई दोनों के बीच उपस्थित है। इस मानसिक दुराव के पीछे इतिहास खड़ा है। पृथ्वी नारायण शाह ने आपके राज्य को "असग हिन्दुस्तान" बताया और भारत को दूषित 'मुगलान'। तीर्थाटन, व्यापार या विवाह आदि अवसरों पर भारत भ्रमण के उपरान्त सनातनी नेपाली अपना शुद्धिकरण करते रहे। गोरखा सैनिकों के बहादुरी के गीत गाये गये; परन्तु वे ही गोरखे स्वतंत्रता सेनानियों पर अंग्रेजों के ढाल बने और इसे भुला दिया गया। नेपाल में प्रजातंत्र की लड़ाई में भारतीयों और भारत सरकार का योग भुला दिया गया। मदेशियों की अपनी मान्यता है कि वे हिन्दी भाषी है और उन्हें हिन्दी प्रयोग करने के पूरा अधिकार है। परन्तु नेपाल इसकी मान्यता नहीं देता। मदेशियों को परस्पर विभाजन करने के लिए उन्हें मैथिली, अवधी और भोजपुरी भाषी बताया जाता है। भगवान बुद्ध, जनक, राम, कृष्ण, और पौराणिक और ऐतिहासिक विभूतियाँ भारतीय संस्कृति की धरोहर हैं। परन्तु उन पर जितना भारत का हक है, उतना नेपाल का, बर्मा का, श्रीलंका का, तिब्बत, चीन या मंगोलिया आदि का है। उन्हें राष्ट्रीय सीमाओं में बांधना उनकी महता कम करना हुआ। क्या ईसा मसीह इजरायल के हैं या ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका या किसी अन्य देश के? कभी कभी लगता है कि नेपाल का बुद्धिजीवीवर्ग अपने नये राष्ट्रीय प्रतीकों की तलाश में व्यस्त है। कुछ स्वीकारात्मक स्तम्भ नहीं पाकर अपनी खीझ भारत के प्रति नकारात्मक रूप में प्रकट करता रहता

है। गाहे-बगाहे बिना किसी वस्तुपरक कारण के भारतविरोधी लहर उठती है। कभी किसी फिल्मी अदाकार के पुतले जलाए जाते हैं और बाद में पता लगता है कि पूरी पहल अफवाह पर आधारित थी। अधकचरे नेपाली बुद्धिजीवी बृहद् नेपाल की परिकल्पना कर हिमाचल से सिक्किम तक के हिमालयी क्षेत्रों को भारतीय संघ से वापस लेना चाहते हैं। भले ही इन क्षेत्रों पर 1779 से 1814 तक नेपाल मात्र 15 से 45 वर्ष ही शासन किया हो। कभी अपने ही निर्वाचित उपराष्ट्रप्रति के हिन्दी उद्‌बोधन का विरोध करते हैं या किसी फिल्मी मशखरे के भगवान बुद्ध को भारतीय कहने पर हाय-तौबा मचता है। मदेशी समस्या के समाधान के मार्ग में, नेपाली जनमानस की यही मानसिकता रोड़े का काम कर रही है। स्पष्ट है कि राजशाही के पतन के साथ नेपाली मानसिकता नहीं बदल पायी है। नये नेपाल को खुलेपन से अपना चुनाव करना है कि रातजंत्र के अन्त के बाद किस राह पर चलना है : प्रतिगामी तंत्र, लोकतंत्र, माओतंत्र या कोई अन्य अधिनायकतंत्र?

संदर्भ ग्रन्थ

1. Chatterjee, Bhola, A study of Recent Nepalese Politics, The World Press Pvt. Ltd., Calcutta, 1967
2. Chatterjee, Bhola, Palace, People and Politics, Ankur Publishing House, New Delhi, 1980
3. Hofer, Andras, The Caste Hierarchy and the State in Nepal : A study of the Mulki Ain of 1854, Himal Books, Lalitpur, Nepal, 2nd Edition, 2004.
4. Koirala, B.P., Atmabritant : Late Life Recollections, Himal Books, Lalitpur, Nepal, 2001.
5. Stiller, Ludwig, Silent Cry : The People of Nepal, 1816-1846, Kathmandu, Sahyogi, 1973.
6. Renu, Phanishwar Nath, Kranti Katha (Hindi), Raj Kamal Prakashan, New Delhi, 1977.
7. Whelpton, John, A History of Nepal, Cambridge University Press, Cambridge, UK, 2005.

Various Issues of *Himal South Asia*, Monthly Journal, The South Asia Trust, Lalitpur, Nepal.